RESEARCH INQUIRY
(An International Peer Reviewed Multidisciplinary Referred Research Journal)
Impact Factor :
ISSN

"कार्यशील दम्पत्तियों के बच्चों में व्यक्तित्व विकास : एक अध्ययन"

डॉ. सिद्धार्थ शंकर
समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सारांश–वर्तमान शोध कार्य का मुख्य लक्ष्य इस तथ्य की छानबीन करना है कि क्या दम्पत्तियों के बालक के पालन–पोषण के व्यवहारों में भिन्नता के कारण बालक के व्यक्तित्व विकास को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोंण से प्रभावित करती है। दम्पत्तियों के पालन–पोषण के व्यवहारों से सम्बन्धित सूचनाओं को इकट्ठा करने हेतु एक प्रश्नावली का निर्माण किया गया और प्रयोग में लाया गया। यह प्रश्नावली पालन–पोषण के तीन आयामों को सम्मिलित करती है, वे हैं–**प्रतिबन्धक प्रवृत्ति, पालन–पोषण तथा सामाजीकरण**। एक बालक के स्वस्थ शारीरिक व मानसिक विकास हेतु बालक को अनुशासित करना एक महत्वपूर्ण पहलू है, प्रत्येक दम्पत्ति बच्चों के प्रति अपने व्यवहार में उन्हें अनुशासित करने हेतु प्रतिबन्धक होते हैं। अतः बालकों में अनुशासन को जमाने हेतु पालन–पोषण के व्यवहारों में प्रतिबन्धक व्यवहार एक महत्वपूर्ण घटक होता है। इसी प्रकार देख–भाल भी पालन–पोषण का एक महत्वपूर्ण पहलू है। देखभाल पालन–पोषण के व्यवहारों में बालक का ध्यान रखने के पहलू को व्यक्त करता है। दम्पत्ति बालक की मूलभूत आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं, जैसे भोजन देना, संरक्षण देना, स्वच्छता का ध्यान रखना, अध्ययन हेतु आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध कराना तथा बालक की अन्य आवश्कताएं आदि। सामाजीकरण भी बालक के पालन–पोषण का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है।

प्रमुख शब्द : पालन–पोषण, जीवन शैली, जीवन–परिवेश, देख–भाल, सामाजीकरण।

भूमिका

एक बालक को वयस्क बनाने का कार्य वर्तमान युग में और कौन इतनी कुशलतापूर्वक तथा प्रभावशाली ढ़ंग से सम्पन्न कर सकता है। इसे व्यक्तित्व विकास के रूप में उल्लिखित किया जा सकता है, और इस कार्य को सम्पन्न करने में सम्बद्ध प्रक्रिया को **"सामाजीकरण"** कहा जा सकता है। इसका प्रमुख लक्ष्य, शिशु जीवन की विविध परिस्थितियों के साथ सामंजस्य बैठाने की क्षमता का विकास करना है। बालक के जीवन के प्रथम दो वर्ष, शिशु–पालन के लक्ष्य को प्राप्त करने में निर्णायक होते हैं। इस विषय में परिवार विशेषतः माता–पिता एक प्रमुख भूमिका अदा करते हैं क्योंकि इन निर्माणात्मक वर्षों के दौरान बालक की अन्तः क्रियायें बड़ी सीमा तक परिवार के सदस्यों तक ही सीमित होती हैं। ये अंतः क्रियायें बालक के पालन–पोषण तथा संभालने में माता–पिता के रुख, रुचियों, विश्वासों तथा मूल्यों को व्यक्त करती हैं। अतः माता पिता विकासशील शिशु हेतु आदर्श होते हैं क्योंकि शिशु अधिकतम समय अपने माता–पिता के साथ व्यतीत करता है। जन्म के समय शिशु जैविकीय प्राणी के रूप में होता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वतः नहीं कर सकता है उसे जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित होने के लिए अपने माता–पिता के उचित संरक्षण व देखभाल की आवश्यकता होती है। उचित संरक्षण व देखभाल से तात्पर्य यह नहीं कि माता–पिता केवल अपने बच्चे की शारीरिक आवश्यकताओं की ही संतुष्टि करें अपितु बच्चे के स्वस्थ संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण हो सके और वह परिवार व समाज के अच्छे नागरिक के रूप में विकसित हो सके। वास्तव में पालन–पोषण का अर्थ है, बच्चे की केवल भौतिक–शारीरिक आवश्यकतायें ही नहीं बल्कि उसके साथ–साथ उनकी मानसिक आवश्यकतायें भी पूरी करना। बाल पालन–पोषण की प्रक्रिया निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। किशोरावस्था तक प्रत्येक बालक को अपने माता–पिता तथा वयस्कों के संरक्षण की आवश्यकता होती है। परिवार के सदस्य समय–समय पर बालक का उचित मार्गदर्शन कर उसके वर्तमान जीवन तथा भविष्य निर्माण पर प्रभाव डालते हैं। इस सम्बन्ध में **डेविस** ने कहा है कि, "बालक अभिभावक सम्बन्ध बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण पर प्रभाव डालते हैं।"[1]

यह माना जाता है कि अच्छा बाल पालन–पोषण बालक तथा माता पिता के मध्य अच्छे अंतःसम्बन्ध स्थापित करता है तथा सर्वांगीण विकास में सहायता प्रदान करता है। यदि बालकों का पालन–पोषण भली प्रकार से नहीं किया जाता है तो वे विकास के सभी क्षेत्रों में पिछड़ जाते हैं और

उनमें समायोजन समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं फलस्वरुप बालक समस्यात्मक और अपराधी बन जाते हैं। अतः बालकों के स्वस्थ विकास के लिए यह आवश्यक है कि माता–पिता उनके पालन–पोषण पर उचित ध्यान दें और उन्हें वे सभी साधन व सुविधायें प्रदान करें जो सर्वांगीण विकास में सहायक हो। प्रत्येक परिवार अपने बालकों का पालन–पोषण करता है किन्तु प्रत्येक परिवार की बाल पालन–पोषण की विधियाँ, सांस्कृतिक, सामाजिक व धार्मिक परम्पराओं, सामाजिक मूल्यों तथा सामाजिक व आर्थिक स्तरों के अनुसार अलग–अलग होते हैं। जिस समाज में हम रहते हैं उसके अपने कुछ आदर्श, मान्यतायें व परम्परायें होती हैं।[2]

उसी के अनुसार समाज परिवार से बालक के पालन–पोषण की अपेक्षा करता है जिससे बालक का स्वस्थ सामाजिक विकास हो और वह समाज के अच्छे सदस्य के रूप में विकसित हो। हमारे देश भारत में शहर या गाँव की जीवन शैली में काफी भिन्नता पाई जाती है इसलिए इन दोनों क्षेत्रों में बच्चों के पालन–पोषण की विधियों में भी अन्तर है। गाँव में आज भी अन्धविश्वास होने के कारण वहाँ की सामाजिक मान्यतायें, मर्यादायें अभी भी मजबूत हैं उनमें अपनी धार्मिक, सामाजिक रीतियों के प्रति कोई शंका नहीं है, न ही कोई प्रश्न है। आज के वैज्ञानिक युग में अभी भी गाँव एक ही समूह है। इसलिए उनमें विभिन्नता नहीं है। एक गाँव की संस्कृति व जीवन शैली एक सी होती है जबकि शहर उस समुद्र के समान होता जा रहा है जहाँ विभिन्न नदियाँ आकर मिलती हैं इसलिए यहाँ की जीवन शैली अलग–अलग धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक नीतियों से प्रभावित होती है, इसलिए यहाँ के आर्थिक–सामाजिक स्तरों में अन्तर होने के कारण रहन–सहन के स्तर में अन्तर है और इस अन्तर के कारण बच्चों को पालने की विधियों में भी अन्तर है। बालक के शिक्षण से सम्बन्धित अध्ययन, जिसका अनुमोदन पूरे विश्व के मानव–विज्ञानी, समाजशास्त्रियों, समाज सेवकों तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है, बालक के शिक्षण सम्बन्धी पद्धतियों में विविधताओं की एक विस्तृत श्रेणी को प्रस्तावित करता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **फ्रायड**[3] (1949) ने कहा है कि, "किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी बाल्यावस्था के प्रारम्भिक पाँच वर्षो में सुनिश्चित हो जाता है।" प्राकृतिक तथा सामाजिक असंख्य निश्चित कारक हैं जिनका एक ही समाज के भिन्न समूहों में बालक के शिक्षण सम्बन्धी पद्धतियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। कुछ विशेष अस्थिर कारकों, जैसे–शैक्षणिक स्तर, आर्थिक स्थिति, जाति, कुल, धर्म तथा अन्य कारकों के कारण किसी समाज में माता–पिता के मध्य कुछ विभिन्नतायें भी होती हैं। फिर भी, प्रायः विविधताओं की ये श्रेणी छोटी ही होती है पर इनका बच्चों पर एक निश्चित प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक समाज में माता ही बालक के पालन–पोषण तथा देखभाल में सर्वाधिक समय व्यतीत करती है। यह पाया गया है कि कामकाजी तथा गैर–कामकाजी माताओं के बालक के लालन–पालन सम्बन्धी गतिविधियों में भिन्नता होती है और यह भिन्नता होना निश्चित है। आधुनिक संसार में माता मुख्यतः तो इसलिए कार्य करती है क्योंकि परिवार को धन की आवश्यकता होती है तथा द्वितीयक इसलिए ताकि वह स्वयं की एक व्यक्तिगत पहचान प्राप्त कर सके। जीवन निर्वाह के महंगे होने के कारण बहुत से परिवार में माता–पिता दोनों का काम करना अनिवार्य होता है ताकि वे स्वयं को वह जीवन स्तर उपलब्ध कराने में सहयोग कर सकें जो एक ही कमाऊ सदस्य द्वारा नहीं उपलब्ध किया जा सकता है और कई परिवारों में दो कमाऊ सदस्यों की आवश्यकता पड़ती है, ताकि वे परिवार को निर्धनता से उबरने में सहायता कर सकें। इसलिए बालक के लालन–पालन की रीतियों में यह एक निश्चित भिन्नता उत्पन्न करता है। बालक के लालन–पालन के तरीकों में विभिन्नता बालक के मनोवैज्ञानिक विकास को प्रभावित करती है। बालक के पालन–पोषण की चाहे जो पद्धतियाँ अपनाई जाये, उनका बच्चों के व्यक्तित्व के विकास पर बहुत प्रभाव होता है। यह प्रभाव बच्चे में उसके विकास के प्रारम्भिक चरण से ही देखा जाता है। विभिन्न परिवारों, समुदायों, संस्कृतियों तथा सामाजिक–आर्थिक स्तरों में पले–बढ़े बच्चे व्यक्तित्व विकास के विभिन्न रूपों से युक्त होते हैं।

शिशु पालन में शिशु को भोजन, आवास तथा वस्त्र जो कि बुद्धि तथा शारीरिक विकास हेतु मूल तत्व होते हैं, को उपलब्ध कराने के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ सम्मिलित है। बालक को अपनी माताओं को पहचानने हेतु अवसर उपलब्ध कराये जाने चाहिए। सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व वह प्रेम तथा

अनुराग होता है जो माता–पिता अथवा अन्य द्वारा उपलब्ध होता है जो शिशु का ध्यान रखते हैं। मनोवैज्ञानिक शोध में बच्चों की देखभाल को प्रायः **''एकरूप व्यवस्था''** के रुप में वर्णित किया जाता है जिसका वास्तविक रुप में ''मातृत्वहीन'' की भाँति विशेषीकरण उन अन्वेषकों द्वारा किया जा सकता है जो कभी–कभी ही बालक के रख–रखाव की योजनाओं का अध्ययन करते हैं। ''गृह सुरक्षा'' को एक समान रूप में वर्णित किया जाता है जैसे कि सभी परिवार एक जैसे हों और शिशु की देख–भाल की अन्य व्यवस्थाओं से अधिक इसे महत्व दिये जाने हेतु यह स्वीकृत है। शिशु की देखभाल की योजनायें–व्यवस्थायें प्रत्येक घर में भिन्न–भिन्न होती हैं। बच्चों पर शिशु पालन के प्रभावों पर की गई शोध ने विरोधाभासी निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। यद्यपि कुछ अध्ययनों ने शिशु–पालन के अनुभव से युक्त तथा इस अनुभव से रहित बच्चों के सामाजिक व्यवहारों के बीच कोई भिन्नता प्रस्तुत नहीं की है फिर भी दूसरे अध्ययन यह दर्शाते हैं कि, वे बालक जो माता की देख–रेख में पले नहीं होते वे सामाजिक रूप से अधिक समर्थ सिद्ध होते हैं जबकि अन्य योग्यता के निम्नस्तर को दर्शाते हैं। पर एक बात निश्चित है कि प्रेम से वंचित होने का बढ़ते बच्चे पर अवांछनीय प्रभाव पड़ता है, यह उसके शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक विकास को अवरूद्ध करता है।

शिशु पालन का तात्पर्य उस द्विमुखीय प्रक्रिया या कला से है जिसमें माता बच्चे की गर्भावस्था से पूर्व किशोरावस्था तक की आयु तक उसकी देखभाल व पालन–पोषण कर उसे असहाय तथा निर्बल स्थिति से सहाय तथा सबल स्थिति में पहुंचाते हुए उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का प्रयास किया जाता है। बाल पालन शिशु से वयस्कता तक की शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक, सामाजिक तथा व्यक्तित्व विकास को बढ़ावा देने और समर्थन करने की प्रक्रिया है।

बाल–पालन पर्याप्त चुनौतीपूर्ण कार्य है। आप किस तरह से बच्चों का पालन–पोषण करते है, किन शैलियों का उपयोग उनकी देखभाल में करते है यह बहुत महत्वपूर्ण है। बाल–पालन की शैलियों से जुड़े प्रमुख कारकों में नियम, व्यवहार, नियंत्रण, सहायक प्रक्रिया तथा अपेक्षाएं शामिल हैं। बाल–पालन शैली बच्चों में उपलब्धियों, स्वतंत्रता, जिज्ञासा, आत्मनिर्भरता, आत्मनियंत्रण और मित्रता जैसे लक्षणों को प्रभावित करती है। बाल–पालन की शैली काफी हद तक बच्चों के वर्तमान और भविष्य को प्रभावित करती है। माता–पिता अपने बच्चों की परवरिश कैसे करते हैं काफी हद तक उनके बीच के सम्बन्धों को तय करता है।

'पालन–पोषण' एक संश्लिष्ट शब्द है जिसके अन्तर्गत स्तनपान कराना, बोतल द्वारा दूध पिलाना, मूत्र पर नियंत्रण, शौच सम्बन्धी प्रशिक्षण, सोना, स्नान करना, बड़ों से बातचीत करना तथा बालक की परवर्ती आयु में अनुशासन सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करना सम्मिलित है। बदली हुई आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप आधुनिक दम्पत्ति घर से बाहर निकलकर परिवार को समुचित तथा निर्बाध रूप से चलाने हेतु पूरक आर्थिक स्रोत की व्यवस्था करने को बाध्य हैं। दादी तथा नानी की परम्परागत पालन–पोषण की पद्धतियों को आधुनिक कार्यशील दम्पत्तियों से कोई अनुमोदन नहीं मिलता। इसके बजाय आधुनिक दम्पत्ति अपने जीवन–परिवेश के लिए उपयुक्त पालन–पोषण की पद्धतियों का प्रयोग करते हैं कि कैसे वह विचार करता है, महसूस करता है या क्रिया करता है। शब्द 'लक्षण' व्यक्तित्व की स्थिर विशिष्टता की ओर इंगित करता है जिसका भावनात्मक या कल्पनात्मक सन्दर्भ होता है जैसे 'शैली' के विरूद्ध जो कि बिना किसी वाह्य अथवा आन्तरिक सन्दर्भ के मात्र एक प्रक्रिया होती है।

निष्कर्ष

बालक के पालन–पोषण का लक्ष्य, बालक में उस सांस्कृतिक व्यवस्था के प्रति अनुकूलन की क्षमता विकसित करना है, जिससे कि वह सम्बन्धित होता है। अनुकूलन की क्षमता या बालक की क्षमताओं व सम्भावनाओं का बोध उसके अनुवांशिक प्रभाव तथा उसके चारों ओर के प्राकृतिक व सामाजिक प्रभावों को सम्मिलित करता है। इस विषय में परिवार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है चूँकि इन निर्माणात्मक वर्षों में बालक की अन्तः क्रियाएं उसके परिवार के सदस्यों के प्रति घनिष्ठता एवं गहनता से जुड़ी होती हैं। यह अन्तः क्रियाएं माता–पिता की प्रवृत्तियों, रूचियों, विश्वासों और मूल्यों जो वे अपने बच्चे की देख–भाल तथा प्रशिक्षण हेतु प्रयोग करते हैं, को व्यक्त करती हैं। अतः माता–पिता,

विकसित होते बालक हेतु आदर्श का कार्य करते हैं (जायसवाल[5],1988)। इस रूपरेखा का प्रेषण किसी भी माता–पिता के लिए कहीं अधिक प्रभावशाली कार्य होता है जिसका वे सामना करते हैं। यदि वे अपने बालक को एक ऐसे वयस्क के रूप में विकसित करने की इच्छा रखते हैं जो अपने समाज में प्रभावशाली ढ़ंग से परिचालन कर सके तो यह महत्वपूर्ण कार्य **''बालक का पालन–पोषण''** कहा जा सकता है, प्रक्रिया जो इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पादित करने में शामिल होती है, 'सामाजीकरण' कही जा सकती है, जिसके द्वारा एक बालक जो समाज में जन्म लेता है, एक सामाजिक प्राणी बनता है। बदलती आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप आधुनिक कार्यशील दम्पत्ति घर से बाहर निकलने तथा अतिरिक्त वित्तीय साधनों को अर्जित करने को विवश हैं, ताकि वह परिवार को सुव्यवस्थित तथा सुचारू रूप से चला सकें। इसके लिए दम्पत्ति अपने जीवन के परिवेश के अनुकूल पालन–पोषण पद्धतियों का अनुसरण करते हैं। इन सबके बावजूद समाज, बच्चों के पालन–पोषण पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

सन्दर्भ

1. Davis, A. and Havighurst, R.J. Social class and color differences in child rearing. Acc. Social Rev. 1946, 11, 698-710.
2. गुप्ता एम.एल. तथा शर्मा डी.डी. (1996)–समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
3. Freud, S. (1949) :An Outline of psychoanalysis (J. Strchey Trans) New York; Nortonoriginally Published (1940).
4. Sears, R.R., Maccoby, E.E. & Lewin, H.(1957) : Patterns of child rearing, Euanston, Raw, Peterson.
5. Jaiswal, S. and Grewal, H., (1988) : Child rearing practices in India. Indian psychological review, vol., 33, pp.30–40.

❐❐❐

RESEARCH INQUIRY